ओ३म्

-सत्यासत्य का विचार व चिन्तन -

**‘विकासवाद बनाम् वैदिक धर्म (वेदों का त्रैतवाद)’**

-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।

विकासवाद का सिद्धान्त संसार में ऐसे समय पर आया जब विज्ञान विकासशील अवस्था में था। विकासवाद का सिद्धान्त इंग्लैण्ड में जन्में चार्ल्स राबर्ट डारविन (जन्म 12 फरवरी, 1809 तथा मृत्यु 19 अप्रैल, 1882) ने दिया। इसका आधार क्या था? इसका उत्तर यही है कि उनकी कल्पनायें, विचार, चिन्तन, सृष्टि की उत्पत्ति का अध्ययन, व उनके अपने निष्कर्ष। वह यह तो जानते थे कि यह सृष्टि हमेशा से इसी रूप में विद्यमान नहीं है अपितु इतिहास की दृष्टि से हजारों, लाखों व उससे भी पूर्व बनी है परन्तु कब व कैसे बनी इसका कोई विज्ञान व बुद्धि संगत ठोस सिद्धान्त न तो उस समय के साहित्य अथवा बाइबिल में ही उपलब्ध था और न कहीं अन्यत्र, अतः उन्होंने व उनके सभी समकालीन पश्चिमी विद्वानों ने बाइबिल के परिप्रेक्ष्य में कल्पनायें की। वैदिक मत के सत्य को स्वीकार करना उन्हें अभिप्रेत नहीं था अन्यथा उनके धार्मिक सिद्धान्तों को खतरा होता। श्री डारविन भारत आये नहीं और भारत में जो वैदिक साहित्य जिसमें वेद और दर्शन भी शामिल है, उससे वह अनभिज्ञ थे अथवा उन्होंने सोच-मसझकर उसकी उपेक्षा की। यह आश्चर्य की बात है कि उनके जन्म के ठीक 16 वर्ष बाद गुजरात की धरती में टंकारा नामक ग्राम में एक औदिच्य ब्राह्मण कुल में बालक मूलशंकर जो बाद में महर्षि दयानन्द के नाम से प्रसिद्ध हुए, जन्म हुआ। महर्षि दयानन्द ने अपने शैशव काल में अपने परिवार में जब तर्क व बुद्धि की तुला पर समझ में न आने वाली मूर्तिपूजा आदि धार्मिक परम्पराओं को देखा व समझा तो उन्होंने उन मान्यताओं के विरूद्ध एक प्रकार का विद्रोह कर दिया और सत्य, ज्ञान व विज्ञान की खोज में घर से निकल पड़े। महर्षि दयानन्द ने भी इस सृष्टि की उत्पत्ति के सिद्धान्त का वेदों व वैदिक साहित्य के आलोक में अध्ययन किया और सन् 1863 व उसके बाद अनेक अवसरों पर उन्होंने अपने ग्रन्थों, सन्ध्या, सत्यार्थ प्रकाश एवं ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, वार्तालाप, शास्त्रार्थ आदि के माध्यम से सृष्टि विज्ञान का स्वरूप प्रस्तुत किया जो बुद्धिसंगत, तर्कसंगत, अकाट्य होने के साथ ज्ञान व विज्ञान की कसौटी पर भी खरा है।

हम पहले महर्षि दयानन्द के सिद्धान्त को जान लेते हैं। महर्षि दयानन्द के अनुसार जगत में 3 पदार्थों का अस्तित्व सदा-सर्वदा, अनादिकाल से है जिन्हें ईश्वर, जीव व प्रकृति के नाम से जाना जाता है और यह तीनों नाम हमें शाश्वत दैवीय साहित्य ‘वेद’से मिले हैं। इसमें ईश्वर व जीव तो चेतन पदार्थ हैं जबकि प्रकृति जड़, अचेतन अथवा निर्जीव पदार्थ या तत्व है। सृष्टि की रचना से पूर्व यह प्रकृति कारण अवस्था में होती है जो अत्यन्त सूक्ष्म कणों, जो ऊर्जा के कण हैं, सत्व, रज व तम इन प्रकृति के गुणों की साम्यावस्था है। यह सृष्टि निर्माण की सामग्री है। इस प्रकृति में ही उन्नति, विकास, स्वयं नहीं अपितु ईश्वर के द्वारा, होकर यह कार्य सृष्टि या सारा जगत जिसमें सूर्य, चन्द्र, पृथिवी, अनेकानेक ग्रह व उपग्रह, नक्षत्र, आकाश गंगाएं, निहारिकायें, अग्नि, जल, वायु और आकाश आदि हैं, बनते हैं। प्रश्न मात्र यह है कि क्या यह अपने आप बने हैं या इन्हें किसी ने बनाया है। विज्ञान का एक नियम है कि प्रत्येक क्रिया की प्रतिक्रिया होती है। अतः प्रतिक्रिया के पीछे क्रिया और क्रिया के पीछे एक चेतन कर्ता का होना आवश्यक है अन्यथा क्रिया का होना असम्भव है। इसे आप इस प्रकार से समझ लें कि रोटी के बनाने का सारा सामान या सामग्री रसोई गृह में उपलब्ध है। इन सब सामान से एक दिन, महीने, एक वर्ष या अनेकों वर्षों में भी अपने आप रोटी नहीं बन सकती। रोटी कब बनेगी जब एक चेतन सत्ता, मनुष्य, स्त्री वा पुरूष, जो रोटी बनाना जानता है, वह उचित मात्रा में रोटी बनाने के लिए आवश्यक सामग्री लेकर विधि पूर्वक या ज्ञानपूर्वक रोटी को बना दें। तभी रोटी बनेगी अन्यथा कभी नहीं बन सकती। इसी प्रकार कारण प्रकृति से कार्य प्रकृति अर्थात् सूर्य, चन्द्र व पृथिवी आदि एक चेतन सत्ता के द्वारा ही बनायें गये हैं। ऐसा ही वर्णन वेदों में है और इसी सिद्धान्त को वेद और वैदिक ग्रन्थों के आघार पर स्वामी दयानन्द जी ने सविस्तार व सयुक्तिक प्रस्तुत किया है। महर्षि दयानन्द जी को तो वेद और वैदिक साहित्य सृष्टि रचना व उसकी उत्पत्ति के सिद्धान्त को प्रतिपादित करने के लिए मिल गये और उन्होंने विज्ञान की नीति व रीति से सृष्टि रचना के सिद्धान्त का प्रतिपादन कर दिया परन्तु चार्ल्स डारविन सहित पश्चिम जगत के अन्य विद्वानों के पास वेदों का ज्ञान नहीं था अतः उन्हें कल्पनायें करनी पड़ी और वह कल्पनायें सत्य व यथार्थ से विरूद्ध, उससे हटकर व अटपटी सी, ज्ञान व बुद्धि तथा तर्कहीन सी उन्होंने प्रस्तुत की। पश्चिमी जगत को वेदों का सिद्धान्त पता नहीं था अतः वहां के लोगों व वैज्ञानिकों ने चार्ल्स डारविन की मान्यता को वैज्ञानिक सिद्धान्त मान लिया जबकि यह सत्य के पूर्णतया विपरीत था व है। आज भी इसको निर्भ्रान्त सिद्ध नहीं किया जा सका है। इससे पता चलता है कि कई बार बड़े बड़े ज्ञानी, विद्वान व वैज्ञानिक भी गलत बात को स्वीकार कर लेते हैं जबकि वह तर्क व प्रमाणों से पूरी तरह से सिद्ध नहीं होती हैं। परन्तु खेद इस बात का है कि वैज्ञानिक अपनी बात व मान्यता की सतत खोज करते रहते हैं और उसे अन्तिम परिणाम पर पहुंचाते हैं परन्तु हमारे विदेशी वैज्ञानिक बन्धुओं ने सृष्टि उत्पत्ति व रचना के वैदिक सिद्धान्त की भली-भांति परीक्षा करना उचित नहीं समझा, यह चिन्तनीय है। ऐसा उन्होंने क्यों किया इससे भ्रान्ति व भ्रमों को आश्रय मिलता है। इसका एक कारण उनकी भारत विरोधी धारणा भी प्रतीत होती है। जब अपने देश के लोग ही विदेशियों का अन्धानुकरण करें तो विदेशी वैज्ञानिक, समाज शास्त्री व धर्मवेत्ता भी भारतीय वेदों के सत्य सिद्धान्तों की उपेक्षा करें, तो इसमें आश्चर्य कैसा?

विकासवाद क्या है? विकासवाद शब्द पृथिवी एवं जैविक रचना या उत्पत्ति व उसके विकास अथवा उन्नति के लिए प्रयोग होता है। विकासवाद के सिद्धान्त के जनक चार्ल्स राबर्ट डारविन महाशय है। डारविन एक वैज्ञानिक थे। उन्होंने जड़ एवं जैविक सृष्टि की रचना व उत्पत्ति पर विचार किया। उनके ज्ञान में बाइबिल के सिद्धान्त अवश्य विद्यमान थे जो विज्ञान के अनुकूल व अनुरूप नहीं थे। उन्होंने अनुमान से कार्य लिया और सोचा कि इस ब्रह्माण्ड को बनाने वाला तो कोई दिखाई नहीं देता और न वह उनकी बुद्धि में ही आ सका, अतः स्वाभाविक था कि उन्होंने सृष्टि को स्वतः, स्वयं, अपने आप निर्मित मान लिया और कहा कि धीरे-धीरे, क्रमिक रूप से, स्वतः विकास होता है और यह ब्रह्माण्ड और जैविक सृष्टि अस्तित्व में आ जाती है। हमारा मानना है कि यदि सृष्टि की आदि में भारत में ईश्वर ने आदि चार ऋषियों को वेदों का ज्ञान न दिया होता तो हमारे पूर्वजों को भी काफी मशक्कत करनी पड़ती और वेदों के आधार पर जो सिद्धान्त हमारे सामने तब आये और आज भी विद्यमान हैं, वह कदापि न होते। भारत का बच्चा-बच्चा कभी वेदों की शिक्षा के अनुसार यह जानता व मानता था कि ईश्वर निराकार, सर्वव्यापक, नित्य, अनादि, अजन्मा, अनन्त, अमर, जीवात्मा का पिता-माता-आचार्य-राजा और गुरू है, उसने जीवों को पूर्व जन्मों के आधार पर उनके सुख व दुख रूपी कर्मों के फलों के लिए ही अपनी सामर्थ्य के साफल्य व जीवों के सुख के लिए इस सृष्टि की रचना की है। यदि डारविन ने प्रयास किया होता तो वह कम से कम मनुस्मृति को ही प्राप्त कर सृष्टि की रचना के वैदिक सिद्धान्त को जान सकते थे, और तब यदि वह पक्षपात न करते तो ईश्वर का स्वरूप भी उन्हें समझ में आ जाता और सृष्टि की उत्पत्ति से जुड़े हुए सभी प्रश्नों के सन्तोषजनक उत्तर उन्हें मिल जाते। भारत में उनके देश की सरकार थी और इंग्लैण्ड में प्रो. फ्रेडरिक मैक्समूलर आदि अनेक वेदों के जानकर मौजूद थे जिनसे वह जानकारी ले सकते थे व स्वयं भारत भी आ सकते थे। एक वैज्ञानिक होकर उन्होंने यह कार्य क्यों नहीं किया? यह आश्चार्यजनक है और सन्देह व शक पैदा करता है। इससे यह भी संकेत मिलता था कि उन्होंने सत्य की खोज करने के लिए पर्याप्त प्रयास नहीं किए। ऐसी ही शिकायत हमें देश व विदेश के वैज्ञानिकों से भी होती है। हमारे पश्चिमी वैज्ञानिकों ने जड़ प्रकृति का अध्ययन किया व अनेकानेक नियमों को खोज निकाला, उन्हें विज्ञान व गणित के माध्यम से प्रस्तुत किया जिससे आज हम विज्ञान के शिखर पर पहुंच गये हैं। हम सभी वैज्ञानिकों का उनकी खोजों व आविष्कारों तथा अनेकानेक कम्प्यूटर, सूचना के यन्त्र आदि उपकरण प्रदान करने के लिए उन्हें साधुवाद भी देना चाहते हैं परन्तु हमें उन वैज्ञानिकों पर आश्चर्य होता है जो परमाणु बनाने वाली अदृश्य कारण सत्ता ईश्वर जो एक निराकार तत्व है, उसका संकेत मिलने पर भी उसे स्वीकार नहीं करते। क्या इलेक्ट्रान प्रोटोन, व न्यूट्रॉन आदि प्रकृति के (सत्, रज व तम् गुणों) में स्वयं परस्पर नाना प्रकार के हाइड्रोजन, हीलियम व अन्य सभी तत्व वा सूर्य, चन्द्र, नक्षत्रों व पृथिवी एवं पृथिवीस्थ पदार्थ बनाने की क्षमता है? यदि नहीं है, कदापि नहीं है, तो फिर या तो वह इसका सन्तोषजनक उत्तर दें या ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार करें। ईश्वर को स्वीकार न करने से उनका पक्षपातपूर्ण होना प्रतीत होता है।

हमने उपरोक्त विचार विकासवाद की जिन मान्यताओं व सिद्धान्तों को दृष्टिगत करके प्रस्तुत किये है उसके अनुसार वर्तमान सृष्टि अपने से पूर्वरूपों का स्वतः विकसित और उन्नत रूप है। पूर्व से निर्धारित न इसकी कोई योजना है और न इसका कोई प्रयोजन है। तदनुसार समस्त प्राणियों के शरीर अमीबा नाम के एक अत्यन्त निकृष्ट प्राणी से प्रारम्भ होकर एक-दूसरे का विकृत रूप है। हम आशा करते हैं कि विज्ञान व अध्यात्म विज्ञान के सम्बद्ध लोग इस पर विचार करेंगे और वैदिक सिद्धान्तों को आगामी काल में विज्ञान द्वारा स्वीकार कर लिया जायेगा इसकी आशा करते हैं।

आईये, महर्षि दयानन्द के अनुरूप संसार में विद्यमान ईश्वर, जीव व प्रकृति के स्वरूप को भी जान लेते हैं। उनके अनुसार - ‘‘ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनादि, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र व सृष्टिकर्ता है। (सभी मनुष्यों को) उसी की उपासना करनी योग्य है। स्वमन्तव्य प्रकाश में उन्होंने लिखा है कि – “ईश्वर कि जिसको ब्रह्म, परमात्मादि नामों से कहते हैं, जो सच्चिदानन्दादि लक्षणयुक्त है जिसके गुण, कर्म, स्वभाव, पवित्र हैं जो सर्वज्ञ, निराकार, सर्वव्यापक, अजन्मा, अनन्त, सर्वशक्तिमान, दयालु, न्यायकारी, सब सृष्टि का कर्ता, धर्ता एवं हर्ता, सब जीवों को कर्मानसुार सत्य न्याय से फलप्रदाता आदि लक्षणयुक्त परमेश्वर है, उसी को मानता हूं।“ महर्षि दयानन्द के लघु ग्रन्थ आर्योद्देश्यरत्नमाला में ईश्वर के सारगर्भित स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है कि - ‘‘जिसके गुण-कर्म-स्वभाव और स्वरूप सत्य ही हैं, जो केवल चेतनमात्र वस्तु है तथा जो एक, अद्वितीय, सर्वशक्तिमान, निराकार, सर्वत्र व्यापक, अनादि और अनन्त, सत्य गुणवाला है, और जिसका स्वभाव अविनाशी, ज्ञानी, आनन्दी, शुद्ध, न्यायकारी, दयालु और अजन्मादि है, जिसका कर्म जगत् की उत्पत्ति, पालन और विनाश करना तथा सब जीवों को पाप-पुण्य के फल ठीक-ठीक पहुंचाना है, उसी को ईश्वर कहते हैं।’आर्य समाज का पहला नियम जो महर्षि दयानन्द जी का बनाया हुआ है, उसके अनुसार ‘सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सबका आदि मूल परमेश्वर है।’ इसका सरल अर्थ है कि सब सब सत्य विद्याओं तथा सृष्टि के समस्त पदार्थों का आदि मूल origin and root ईश्वर है।

अब दूसरे चेतन तत्व ‘जीवात्मा’के स्वरूप को प्रस्तुत करते हैं। उनके सिद्धान्तों के अनुसार जीवात्मा चेतन, अल्पज्ञ, एकदेशी, सूक्ष्म, आकाररहित, जन्म-मरण धर्मा, दुःखों से निवृत्ति की इच्छा रखने वाला, अजन्मा, नित्य, अनादि, सत्कर्मों से दुःखों से निवृत्त होकर वेदाध्ययन कर श्रेष्ठ गुण, कर्म व स्वभाव को धारण कर जन्म मरण से छूट कर मुक्ति को प्राप्त करने में समर्थ तत्व व एक पदार्थ है जिसको अग्नि जला नहीं सकती, मृत्यु के बाद भी जिसका अस्तित्व समाप्त नहीं होता, जल इसे गला नहीं सकता, शस्त्र इसे काट नहीं सकते और यह ऐसा पदार्थ है कि वायु इसे सुख नहीं सकती है। इसी प्रकार से प्रकृति को भी जान लेते हैं। प्रकृति की दो अवस्थायें हैं एक कारण व दूसरी कार्य। कारण अवस्था में यह अति सूक्ष्म, सत्व, रज व तम गुणों की साम्यावस्था, ईश्वर के अधीन रहती है। सारा आकाश इससे भरा हुआ होता है। इसी कारण प्रकृति से ईश्वर रचना कर परमाणु आदि अथवा महत्तत्व, अहंकार, पांच तन्मात्रायें आदि बनाकर सृष्टि जिसमें सूर्य, चन्द्र, पृथिवी, नक्षत्र आदि हैं, निर्माण करता है। महर्षि दयानन्द व उनसे पूर्व अनेकानेक पूज्य ऋषियों द्वारा प्रस्तुत ज्ञान ही सत्य, यथार्थ व वास्तविक है।

हम यह अनुमान करते हैं कि भावी समय में कभी न कभी विज्ञान को महर्षि दयानन्द के इन वेदों व वैदिक साहित्य पर आधारित विचारों को स्वीकार करना ही होगा और तब विकासवाद का स्थान वैदिक त्रैतवाद को मिलेगा जिसमे वैज्ञानिकों व धार्मिक लोगोे सहित सारी मानवजाति सम्मिलित होगी।

-मनमोहन कुमार आर्य

पताः 196 चुक्खूवाला-2

देहरादून-248001

फोनः 09412985121

Emal: manmohanarya@gmail.com